શ્રી યશોવિજયજી
જૈન ગ્રંથમાળા
દાદાસાહેબ, ભાવનગર.
ફોન : ૦૨૭૮-૨૪૨૫૩૨૨
૩૦૦૪૮૪૬

1279

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१२
२९९८

रि ग्रन्थमाला पु० ६३

शिक्षण और चरित्र-निर्माण

लेखक :—
मुनिराज विद्याविजय जी
शिवपुरी

वीर सं० २४७६] धर्म सं० २८ [वि० सं० २००७

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रकाशक :—
सत्यनारायण पंड्या,
मंत्री,
श्री विजयधर्म सूरि ग्रन्थमाला,
शिवपुरी, (मध्यभारत)

बम्बई निवासी
श्रीयुत सुमतिचन्द्र शिवजी भाई की
आर्थिक सहायता से मुद्रित

मुद्रक,
राम उजागर पाण्डेय,
मार्डन प्रिंटिंग प्रेस,
लश्कर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शिक्षण और चरित्र-निर्माण

(लेखक—मुनिराज श्री विद्याविजय जी, शिवपुरी)

मानव जाति के साथ शिक्षण का सम्बन्ध हमेशा से चला आया है। कोई ऐसा समय नहीं था, जबकि मनुष्य को शिक्षण न दिया जाता हो। संसार परिवर्तनशील है, इसलिए शिक्षण की पठन-पाठन प्रणाली में, एवं पाठ्य-क्रम तथा अन्यान्य साधनों में परिवर्तन अवश्य होता रहा है। किन्तु शिक्षण, यह तो अनिवार्य वस्तु बनी रही है। "आवश्यकता आविष्कार की जननी है"। जिस-जिस समय जिस चीज की आवश्यकता उत्पन्न होती है, उस समय उस चीज की उत्पत्ति अनायास हो ही जाती है। "कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती"। किसी भी देश में, किसी भी समाज में बल्कि किसी भी कुटुम्ब और व्यक्ति में भी, जो-जो प्रवृत्तियाँ होती हैं, वे सब सहेतुक ही हुआ करती हैं। शिक्षण, एक या दूसरी रीति से सभी देशों, समाजों और व्यक्तियों में हुआ, होता आया और हो रहा है। किन्तु जैसे उसके तरीकों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में—प्रणालिकाओं में फर्क रहा है, उसी प्रकार उसके हेतुओं में भी।

शिक्षण का हेतु—

भारतवर्ष आध्यात्मिक प्रधानता रखने वाला देश हमेशा से रहा है। ईश्वर, पुण्य, पाप आदि की भावना को सामने रख कर ही उसकी प्रत्येक-प्रवृत्ति आज तक रही है। और यही उसकी संस्कृति है। व्यक्तिगत स्वार्थ, लोभ आदि के कारण बुरा काम करते हुए भी, उसको बुरा समझना, एवं पाप समझना, यह भारत की संस्कृति का मुख्य लक्षण रहा है।

भारतीय शिक्षण के हेतु में भी आध्यात्मिकता की भावना ही प्रधान रही है। "सा विद्या या विमुक्तये" "ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः" ये उस सिद्धान्त के प्रतीक हैं। "वही विद्या, विद्या है जो मुक्ति के लिो साधन-भूत हो" तथा "ज्ञान-विद्या के बिना मुक्ति नहीं होती" यह दिखला रहा है कि शिक्षण में हमारा हेतु आत्म-कल्याण का था—ईश्वर के निकट पहुँचने का था और उसी हेतु के परिणाम-स्वरूप हमारे सामने यह वाक्य रक्खा गया था कि "मातृदेवो भव," "पितृदेवो भव",

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

"आचार्य देवो भव," "अतिथिदेवो भव," "धर्मञ्चर" "सत्यम् वद" इत्यादि ।

शिक्षण का क्षेत्र पवित्र क्यों ?

मानव को सच्चा मानव बनाने के लिए ही हमारा शिक्षण, शिक्षण का कार्य करता था । ऐहिक-सुख तो उसके अन्तर्गत था । वह अनायास ही मिल जाता था । भौतिक सुखों का लक्ष्य भारतीय-शिक्षण में नहीं था, फिर भी भारतीय प्रजा उन सुखों से वंचित भी नहीं रहती थी, क्योंकि आध्यात्मिकता—आत्मिकशक्ति—एक ऐसी चीज है जिसके आगे कोई भी सिद्धि हस्तगत हुए बिना नहीं रहती, इसीलिये भारतवर्ष में शिक्षण को सब से अधिक पवित्र क्षेत्र माना है ।

विद्यागुरु का महत्व—

प्राचीन काल में विद्या, विद्यागुरु और विद्यार्थी, इस त्रिपुटी की एकता होती थी । विद्यार्थी विद्या के उपार्जन में विद्या-गुरु को एक महत्व का स्थान मानता था । विद्या की प्राप्ति में विद्या-गुरु की कृपा और आशीर्वाद को ही प्रधान कारण मानता था । और इसी कारण से उनके प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति रखता था ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

गुरु के गुण शिष्य में आना, यह आवश्यक था। गुरु की कृपा के सिवाय यह कैसे हो सकता है? यह भारतीय संस्कृति थी। यही कारण था कि 'गुरुकुल वास' आवश्यकीय समझा जाता था। उपनिषदों और जैनागमों में ऐसे 'गुरुकुलवास' का बहुत महत्व बताया गया है। "विद्या विनय से प्राप्त होती है" यह हमारे देश की श्रद्धा का एक प्रतीक रहा है। विनय-हीन विद्यार्थी की क्या दशा होती है, इसका सुन्दर चित्रण जैनों के उत्तराध्ययन-सूत्र के प्रथम-अध्ययन में पाया जाता है। विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण की यही प्राथमिक भूमिका है। प्राचीन-शिक्षण-पद्धति में इसका प्राधान्य था।

प्राचीन शिक्षण संस्थाएँ—

उपनिषद् और जैनागमों में प्राचीन शिक्षण-पद्धति का जो वर्णन पाया जाता है, उसमें गुरुकुल, अथवा आश्रमों का काफी वर्णन आता है। प्राचीन काल में शिक्षण की जो संस्थाएँ प्रचलित थीं, उनमें मुख्य आश्रम थे। आठ वर्ष की उम्र से बालकों के शिक्षण और चरित्र-निर्माण का कार्य ऐसे ही आश्रमों में प्रारम्भ होता था। यद्यपि इतिहासों में विद्यापीठों का वर्णन भी आता है, जिनमें नालन्दा, मिथिला, बनारस, विजयनगर,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वल्लभीपुर और तक्षशिला आदि स्थानों के विद्यापीठों का काफी उल्लेख मिलता है । वे विद्या-पीठ आज के विश्व विद्यालयों के स्थान में थे । दस-दस हजार छात्रों का रहना, पन्द्रह सौ शिक्षकों का पढ़ाना, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि अनेक विषयों का उच्च-कोटि का ज्ञान कराना यह उन विद्यापीठों का कार्यक्षेत्र था । किन्तु चरित्र-निर्माण का कार्य, जो कि बाल्यावस्था से होना आवश्यक है, वह तो उन आश्रमों में ही होता था । इन आश्रमों की संख्या भारतवर्ष में सैकड़ों की नहीं, सहस्रों के परिमाण में थीं । इतिहासकारों का कथन है कि, जब अंग्रेजों ने बंगाल पर अपना अधिकार जमाया, उस समय केवल बंगाल में अस्सी हजार (८०,०००) आश्रम थे । कहा जाता है कि प्रत्येक चारसौ (४००) मनुष्यों की बस्ती के ऊपर एक-एक आश्रम था । आज भी बंगाल के किसी-किसी ग्राम में ऐसे आश्रम का नमूना मिलता है । जिसको 'बंगीय-भाषा' में "टोल" कहते हैं । ये आश्रम किस प्रकार से चलाये जाते थे, कौन चलाते थे, कहां तक विद्यार्थी रहते थे इत्यादि आवश्यकीय बातों का उल्लेख करना इसलिए जरूरी समझ रहा हूँ कि,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पाठकों के ख्याल में यह बात आजाय कि चरित्र-निर्माण के लिए कैसे वातावरण की आवश्यकता है ?

प्राचीन आश्रम (गुरुकुल):—

प्राचीन समय के आश्रम, जिनको 'गुरुकुल' कहा जा सकता है, वे सादगी और पवित्र वातावरण के प्रतीक थे। न बड़े २ मकान थे, न फर्नीचर का ठाट था। सुन्दर वृक्ष-वाटिकाओं में बने हुए मिट्टी के सादे मकानों में, ये आश्रम चलते थे। गुरु-शिष्यों का सम्बन्ध मानो कौटुम्बिक-सम्बन्ध था। इन आश्रमों को चलाने वाले गुरू भोग-विलासों में लिप्त, शृङ्गार के पुतले, व्यसनों से भरे हुए सांसारिक वासनाओं में रहने वाले गृहस्थ नहीं थे। वे त्यागी, संयमी, जितेन्द्रिय वानप्रस्थ अथवा विरक्त-ऋषि थे। उत्तम संस्कार वाले, शुद्ध गृहस्थाश्रम को पालन करने वाले, माता पिता, छः सात वर्षों तक अपने बच्चों में सुन्दर संस्कार डाल करके विद्याध्ययन के लिए ऐसे पवित्र वातावरण वाले आश्रमों में—गुरुकुलों में- रखते थे। कहा जाता है कि अधिक से अधिक ४४ (चवालीस) और कम से कम २५ (पच्चीस) वर्ष तक इन आश्रमों में वे बालक रहते थे। यह वैज्ञानिक-अनुभव सिद्ध-सत्य है कि वाता-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वरण का प्रभाव मानव जीवन पर पड़े बिना नहीं रहता। सांसारिक वासनाओं से दूर रहने वाले, प्रकृति की गोद में क्रीड़ा करने वाले; त्यागी-संयमी-गुरुजन की सेवा में लगे रहने वाले; विचार, वाणी और आचरण एक ही प्रकार के रखने वाले गुरुओं का प्रतिदिन सदुपदेश श्रवण करने वाले उनके पवित्र जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने वाले और वर्षों तक—यौवन की घोर-घाटी से पार हो जाने तक--ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए एक ही गुरु के आदर्श को सामने रखकर, विद्याध्ययन के साथ अपना चरित्र-निर्माण करने वाले, उन भारतीय बालकों युवकों और वीरों का कैसा चरित्र-निर्माण हुआ करता होगा, यह दिखलाने की आवश्यकता है क्या ? ऐसे आश्रमों में शास्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्या दोनों सिखलाई जाती थी। शास्त्र-विद्या आत्मिकज्ञान के लिए होती थी, और शस्त्र-विद्या रक्षण के लिए होती थी। किसी को हानि पहुँचाने के लिए नहीं। कुटुम्ब, देश और आत्मरक्षा का जब-जब प्रसंग आ पड़ता था, तब वे शस्त्र-विद्या का प्रयोग भी करते थे। एक ही गुरु का आदर्श सामने रहने से चरित्र-निर्माण में विभिन्नता भी नहीं होती थी।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विद्यापीठः—

ऐसे आश्रमों से लाभ उठाने के पश्चात्, जो उच्च-कोटि की भिन्न २ विषयों की विद्या प्राप्त करना चाहते थे, वे लोग उन विद्यापीठों में सम्मिलित होते थे, जिनका संक्षेप में मैंने उल्लेख ऊपर किया है। आध्यात्मिक भावनायुक्त, सुन्दर चरित्र-निर्माण होने के बाद, मनुष्य कहीं भी अथवा किसी भी कार्यक्षेत्र में उतरे, उसके पतन होने की सम्भावना बहुत कम रहती है। कहा जाता है कि, इन विद्यापीठों में अध्यापन का कार्य प्रायः बौद्ध एवं अन्य साधु महात्मा करते थे। इन विद्यापीठों के संरक्षक बड़े बड़े राजा महाराजा थे। इनको चलाने के लिए कई गांवों की आवक होती थी। जिससे न तो विद्यापीठों के संचालकों को आर्थिक-चिन्ता होती थी और न विद्यार्थियों को विद्याध्ययन के लिए द्रव्य का बोझ उठाना पड़ता था।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव—

सैकड़ों वर्ष पहले की बातें अब तो मात्र शास्त्र और भूतकालीन इतिहास की बातें रह गई हैं। समय का परिवर्तन हो गया। सदियों से हमारा देश विभिन्न-संस्कृतियों के आधीन रहा, हमारी विद्या, हमारी संस्कृति

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हमारा रक्षण, हमारी धार्मिकता, हमारी अर्थ संपत्ति सभी दूसरों के आधीन रही, और सो भी ऐसे लोगों के आधीन रही, जिनका ध्येय हम से विपरीत, जिनकी संस्कृति हमसे विपरीत, बल्कि संक्षेप से यही कहना चाहिए कि चरित्र-निर्माण के साथ में संबंध रखने वाली किंवा मानव जीवन की सफलता से संबन्ध रखने वाली, सभी बातें हमसे विपरीत ! एक संस्कृति जीवन में भौतिकवादको—जड़वाद को प्रधानता देती है, और दूसरी संस्कृति (भारतीय संस्कृति) आध्यात्मिकवाद को। एक भोग की उपासिका है, तो दूसरी त्याग की, संयम की। एक स्वार्थसिद्धि के लिए दूसरे का सर्वनाश सिखाती है, तो दूसरी, दूसरे के सुख के लिए स्वार्थ का भी बलिदान सिखाती है। इस प्रकार दोनों संस्कृतियों का संघर्षण ही हमारे देश के पतन का कारण हो रहा है। जिन महानुभावों के ऊपर चरित्र-निर्माण और संस्कृति—रक्षण की विशेष जवाबदारी है वे प्रायः भारतीय-संस्कृति से विपरीत संस्कृति में पले पोसे होने के कारण, हमारे देश के लिये जो बातें बुरी हैं—पतन के कारणभूत हैं, उन्हें भी प्रोत्साहन दे रहे हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उदाहरण के तौर पर—जैसे सिनेमा। कौन नहीं जानता कि चोरी, झूठ, प्रपंच, व्यभिचार आदि संसार की सारी बुराइयां सिनेमा सिखाता है ? जहां हमारी संस्कृति माता बहन और युवती पुत्री के साथ, एक आसन पर बैठने का पुत्र, भाई और पिता को भी निषेध करती है, वहां किसी भी स्त्री के साथ, किसी भी प्रकार बैठने, घूमने और सैर बिहार करने की प्रवृत्ति कहां से चली ? जहाँ कुल-शील की समानता और भिन्न गोत्र को देख कर विवाह शादियां करने की संस्कृति थी, वहां हर किसी के साथ हर किसी समय और हर किसी प्रकार सम्बन्ध (लग्न-नहीं) जोड़ कर वर्ण संकर प्रजा उत्पन्न करने को किसने सिखाया ? जहां किसी भी पर-स्त्री के सामने नेत्र से नेत्र मिला कर बात करना भी अनुचित समझा जाता था, वहां जवान लड़के लड़कियों को एक साथ बैठना, हँसी मजाक करना, एक बैंच पर बैठ कर पढ़ना, एक साथ सिनेमा देखने को जाना इत्यादि बातें किसने सिखायीं ? जहां माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि पूज्यों को देव समझ कर उनके प्रति बहुमान रक्खा जाता था, उनके साथ विवेक और विनय पूर्वक बातचीत की जाती थी, वहां आज उनका अपमान किया जाता है। उनके प्रति युद्ध किया जाता है, उनके ऊपर मुकदमे किये जाते

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हैं। अरे, अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उनका खून तक किया जाता है, यह संस्कृति कहां से आयी ? जहां हमारे खान-पान में भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार किया जाता था, पाप को पाप समझा जाता; वहां आज अहिंसा, सत्य और प्रेम के नारे लगाते हुए—महात्मा गांधी जी के शिष्य होने का दावा करते हुए—सभाओं में महात्मा गांधी जी की अहिंसा, सत्य और प्रेम पर तालियां पिटवाते हुए भी मांसाहार छूटे नहीं; शराब छूटे नहीं; अण्डे छूटे नहीं; कोट, पतलून, टाई, कालर छूटे नहीं; सिगरेट छूटे नहीं; अर्थात् साहेबशाही छूटे नहीं; यह किसका प्रताप है ? संक्षेप में कहा जाय तो—चरित्र निर्माण की पुकार करते हुए भी, चरित्र निर्माण के विघातक हमारा खुद का आचरण हो बल्कि, चरित्र निर्माण की विघातक प्रवृत्तियों को ही उत्तेजन दिया जाय, इससे चरित्र निर्माण की सिद्धि कभी सिद्ध हो सकती है क्या ? विशेष दुःख की बात तो यह है कि जो बातें हमारी भारतीय संस्कृति से विपरीत हैं—हानि-कारक हैं—हानि प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है, फिर भी उस पाश्चात्य संस्कृति की देन को हम अच्छा समझ कर, दूसरों से भी अच्छा मनवाने का प्रयत्न करते हैं। यह देश का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ?

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विद्यार्थियों का चरित्र-निर्माण :—

मुझे तो यहाँ हमारी शाला, विद्यालयों, महाविद्यालयों आदि शिक्षण-संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियों के चरित्र-निर्माण के विषय में कुछ कहना है। क्योंकि देश की, समाज की और वास्तविक मानवधर्म की भावी उन्नति का आधार उन्हीं के ऊपर है। वे ही सच्चे नागरिक बन कर भारतवर्ष को, जैसा पहले था, दुनियाँ का गुरु बना सकते हैं। और उसका सर्व आधार उन्हीं के 'चरित्र-निर्माण' पर रहा हुआ है। शिक्षण, यह तो चरित्र-निर्माण के साधनों में से एक है। हमारा मुख्य ध्येय तो चरित्र-निर्माण का है। 'बी० ए०' हों चाहे न हों 'एम०ए०' 'एल० एल० बी०' हों चाहे न हों 'पी० एच० डी०' 'डाक्टर' 'कलेक्टर' 'एडिटर' 'ओडिटर' 'कन्डक्टर' बेरिस्टर, मास्टर, मोनीटर, हों चाहे न हों; हमारा प्रत्येक छात्र सच्चा नागरिक और हमारी प्रत्येक बहन सच्ची मातादेवी बननी चाहिए। जिन महानुभावों पर हमारे इन भावी उद्धारकों के, देवियों के जीवन-निर्माणकी, सच्ची नागरिकता की जबाबदारी है, उनको बहुत गंभीरता पूर्वक, सोच-समझ करके एक नवीन शिक्षण के क्षेत्र का निर्माण करने की आवश्यकता है। मैं यह समझता हूँ कि यह कार्य अति कठिन है। सहसा परिवर्तन करने लायक वस्तु

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नहीं है। क्योंकि सदियों से हमारे जीवन के अणु-अणु में विष व्याप्त हो गया है। हमें काया कञ्चन जैसी बनानी है, किन्तु जब तक इस विष का नाश न हो, तब तक काया-पलट का कोई भी प्रयोग सफल नहीं हो सकता। हमारे विष की यह परंपरा लम्बे समय से—पीढ़ियों से चली आई है। कोई भली अथवा बुरी प्रवृत्ति इसी प्रकार परंपरा में चली आती हैं। आज हमारे विद्यार्थियों, युवकों, युवतियों में कुछ बुराइयाँ कुछ लोग देख रहे हैं वे हमारी खुद की देन हैं, यह हम भूल जाते हैं। सास् को सताने वाली बहू यह भूल जाती है कि "मैं भी कल सास् होने वाली हूँ। मैं अपनी सास् को नहीं सता रही हूँ. किन्तु अपनीबहू को सताने की विद्या सिखा रही हूँ"। मानव अनुकरण करने वाला प्राणी है। वह यह नही देखता है कि, यह जो कुछ कर रहा है, वह किसलिए कर रहा है। वह तो यही देखता है कि, यह ऐसा करता है, इसलिए मुझे भी ऐसा ही करना चाहिए। पाश्चात्य संस्कृति को हमारे जिन देशवासियों ने अपना लिया है, उन्होंने कब सोचा था कि यह वेश, यह खान पान, यह रहन सहन उस देश के लिए उपयोगी हो सकता है, हमारे लिए नहीं? फिर भी शौक से, मित्रों को राजी करने के लिए, अपना महत्व दिखलाने के लिए या किसी भी कारण से पश्चिम की बातों को स्वीकार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कर लिया। यहां तक कि आज उसे छोड़ना मुश्किल हो गया है। जब बड़े २ लोगों की यह दशा है, तब फिर इन विद्यार्थियों की तो बात ही क्या करें ?

कहने का तात्पर्य यह है कि उचित या अनुचित किसी भी प्रकार से जो बातें भली या बुरी हम एक दूसरे में देखते हैं, वे किसी न किसी की देन हैं। इसलिए मेरा नम्र मत है कि, हमारे लाखों-करोड़ों बालक-बालिकाओं युवक-युवतियों का 'चरित्र-निर्माण' करना है तो हमारे वर्तमान ढांचे को आमूल परिवर्तन करना होगा। भले ही इसके लिए समय लगे, भले ही उसके लिये कितना ही स्वार्थ-त्याग करना पडे.।

यह कार्य इसलिए भी अधिक कठिन मालूम होता है कि, चारों आश्रमों की श्रेष्ठता का मूल कारण जो गृह-स्थाश्रम है, वही इस समय प्रायः छिन्न-भिन्न और पतित हो गया है। ऐसे असंस्कारी, झूठ और प्रपञ्च में ओत-प्रोत, जिनमें ईमानदारी का नामोनिशान नहीं, अन्याय के द्रव्य से उदरपोषण करने वाले, गृहस्थाश्रम के नियमों का पालन न करने वाले, बालक को जन्म देने के अतिरिक्त, उनके प्रति अपना कर्त्तव्य नहीं समझने वाले, भाषाशुद्धि को भी न समझने वाले माता-पिताओं ने छः, सात वर्षों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

की उम्र तक अपने बालकों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जो बुरे संस्कार डाले हैं–डालते हैं, उन्हें मिटाकर नवीन संस्कार और नया ही आदर्श चरित्र-निर्माण हमें करना है। इसलिए भी मैं यह कार्य अधिक कठिन समझता हूं।

कुछ भी हो, मानव जाति के लिए कोई कार्य अशक्य नहीं है। साहस, दृढ़प्रतिज्ञा, निरन्तर परिश्रम और धैर्य-पूर्वक किया हुआ प्रयत्न कभी निष्फल नहीं हो सकता। साठ-साठ वर्षों की घोर तपस्या ने भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त कराई। पिछले तीन वर्षों में भी जो कुछ हुआ है, वस्तुतः देखा जाय तो कम नहीं है। जो कुछ अशान्ति दुःख और न्यूनता देखी जाती है वह तो कुछ लोगों के लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, अनुभव-हीनता, स्वार्थसिद्धि और जीवन की आदर्शिता के अभाव के ही कारण है। यदि ये बातें न होतीं तो, तीन वर्षों में ही भारत-वर्ष सच्चा स्वर्ग बन जाता।

फिर भी हमें निराशा छोड़कर हमारी पाठशाला, विद्यालय, महा विद्यालय आदि शिक्षण-संस्थाओं में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों के चरित्र-निर्माण के लिए प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

क्या करना चाहिए ?

१—विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण के लिए, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, वातावरण शुद्ध न किया जाय तब तक कोई भी प्रयत्न, जैसा चाहिए, वैसा सफल नहीं होगा। इसलिए चरित्र निर्माण में जो २ विघातक बातें हमारे देश में प्रचलित हों, ऐसी बातों को समूल नष्ट करना चाहिए। जैसे कि 'सिनेमा' शृंगार रसपोषक पुस्तकें, समाचारपत्रों में छपने वाले वीभत्स-विज्ञापन, मासिक साप्ताहिक आदि पत्रों में छपने वाले बीभत्स चित्र, आदि जो २ बातें चरित्र को पतित करने वाली हों, उन्हें सरकार को चाहिए कि, बन्द कर दे। अभी २ ऐसा सुनने या पढ़ने में आया है कि सरकार ने अमुक उम्र तक के बालकों को 'सिनेमा' देखने का प्रतिषेध किया है, किन्तु विष तो विष ही होता है, छोटों के लिए, और बड़ों के लिए भी। जब हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि बड़ों के गुण अवगुण का प्रभाव छोटों पर भी पड़ता है तो फिर जिस विष की छूट बड़ों को दी जाती है, उस विष का प्रभाव छोटों पर नहीं पड़ेगा यह कैसे माना जा सकता है? इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान के सिद्धान्तानुसार, निषेध, भी कभी अधिक प्रेरणोत्पादक होता है। जिस चीज का किसी को, खास

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करके बालकों को निषेध किया जाता है, तो उसकी तरफ़ उसकी चित्तवृत्ति अधिक प्रेरित होती है। इसलिए ऐसी चीजों का सर्वथा अदृश्य होना, यही अधिक लाभ-दायक होता है। मैं यह मानता हूँ कि 'सिनेमा' यह किसी भी कार्य-प्रचार के लिए एक बहुत अच्छा साधन है और उस साधन का उपयोग अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए यदि सरकार करना अथवा कराना चाहे, तो वह कर सकती है। किन्तु वर्तमान समय में 'सिनेमा' द्वारा जो प्रचार हो रहा है, वह हमारी बहू-बेटियों हमारे बालक-युवकों तथा शुद्ध गृहस्थाश्रम को पतित बनाने के अतिरिक्त और किस बात में उपयोगी हो रहा है ?

इसी प्रकार शृंगार से भरे हुए उपन्यास आदि वीभत्स पुस्तकें, चित्र, विज्ञापन आदि पर भी सरकार को सख्त निषेधात्मक आज्ञाएँ प्रचलित करनी चाहिएँ। एक ओर से हमारे बालकों और युवकों का जीवन स्तर ऊपर उठाने की हम बातें करें, और दूसरी ओर से चरित्र के पतन करने वाले साधनों का प्रचार करें यह 'वदतोव्याघात' नहीं तो और क्या है?

जो गृहस्थ पैसा पैदा करने के लिए भारतीय संस्कृति से विरुद्ध ऐसा व्यभिचार प्रचारक धंधा करते हैं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वे देशद्रोही नहीं हैं क्या? देश के शुभचिन्तकों का तो यही कर्त्तव्य है कि हमारी संस्कृति का रक्षण हो, हमारी बहन बेटियों का चरित्र पवित्र रहे, हमारे युवक उच्च प्रकार का अपना चरित्र निर्माण करके सच्चे महावीर, सच्चे नागरिक और सच्चे आदर्श पुरुष बनें, ऐसा कार्य करें।

२—शीघ्रता से न हो तो धीरे-धीरे ही हमारे देश की शिक्षण संस्थाओं का परिवर्तन करना जरूरी है। प्रत्येक ग्राम में शिक्षण संस्थाओं के अनुपात में छात्रालय अवश्य हों। प्राचीन पद्धति के अनुसार नहीं तो, कम से कम प्राचीन और नवीनता का मिश्रण करके हमारी शिक्षणसंस्थाएँ निर्माण करनी चाहिएँ। शिक्षक भले ही भिन्न भिन्न विषयों के अनेक हों किन्तु उम्र और शिक्षण के लिहाज से विद्यार्थियों के विभाग करके उनका एक साथ रहना, एक-सा खाना पीना, रहन-सहन, आदि हों, एवं एक ही वयो-वृद्ध, ज्ञानवृद्ध अनुभववृद्ध, व्यवहारकुशल, संयमी, निर्लोभी अधिष्ठाता की देखभाल में उन विद्यार्थियों को रखा जाना चाहिए, और शिक्षण के अतिरिक्त समय के लिए उनका कार्यक्रम ऐसा बनाया जाना चाहिए कि जिससे उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास भी हो, उनमें अनेक प्रकार के गुण आवें और वे सच्चे नागरिक बनें।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यद्यपि वर्तमान समय में विद्यालयों और महाविद्यालयों के साथ बाहर के विद्यार्थियों के लिए प्रायः छात्रालय (होस्टल) बने हैं, परन्तु-चरित्र निर्माण के लिए वे उपयोगी नहीं हैं। बाहर के विद्यार्थियों को रहने की अनुकूलतामात्र के वे छात्रालय हैं। मेरा आशय गुरुकुल जैसे छात्रालयों से है। किसी प्रकार के भेद-भाव न रखते हुए, शिक्षालयों में पढ़ने वाले सभी छात्रों के लिए, एक-एक आदर्श-पुरुष की देख-भाल में अमुक-अमुक संख्या में विद्यार्थियों को रखने का प्रबन्ध होना चाहिए। ऐसा होने से माता पिता के किंवा वाह्यजगत् के कुसंस्कारों से वे बच जायँगे, आपस में भ्रातृभाव बढ़ेगा, छोटे-बडे, की भावना दूर हो जायगी, और एक ही गुरु-नेता के नेतृत्व में उनका आदर्श-जीवन बनेगा। निस्सन्देह, उनका जीवन सकुंचित न रहे, इसलिए उनके आमोद-प्रमोद के शारीरिक-विकास और बौद्धिक-विकास के साधन भी रखे जाने चाहिए। आधुनिक विद्यार्थियों का कोई गुरु नहीं है, उनका कोई आदर्श नहीं है, उनका कोई संयोजक नहीं है, ऐसा जो आरोप लगाया जाता है यदि वास्तव में सत्य भी है, तो यह दूर हो जायगा।

३—तीसरा विषय है विद्यार्थियों के पढ़ाने के विषयों का। आजकल आमतौर से कहा जाता है कि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विद्यार्थियों के पढ़ाने के विषय इतने अधिक और निरर्थक हैं, जिनके भार से विद्यार्थी की बुद्धि का, मस्तिष्क का कचुम्बर (चूर्ण) हो जाता है। खास करके उन विद्यार्थियों के लिए यह वस्तु अक्षम्य मानी जाती है जो कि प्राथमिक और माध्यमिक शालाओं में पढ़ते हैं; छोटी उम्र के हैं। यह बात विचारणीय है। प्राचीन पद्धति के अनुसार रटन (कण्ठाग्र करने की) पद्धति का आजकल विरोध किया जा रहा है। परन्तु इसके बदले में विषयों और ग्रन्थों का भार इतना बढ़ गया है कि जिससे विद्यार्थी और पालक दोनों को मानसिक एवम् आर्थिक कष्ट उठाना ही पड़ता है। इसलिए शिक्षण के नव-निर्माण में छोटे से लेकर बड़ों तक के शिक्षण क्रम में इस बात पर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। होना तो यह चाहिए कि अमुक कक्षा तक के सभी छात्रों को एक समान शिक्षण देने के पश्चात् छात्रों की अपनी-अपनी अभिरुचि, बुद्धि की प्रेरणा और संयोगों को देख करके इच्छित विषय में उनको विकसित बनाने की अनुकूलता करनी चाहिए। ऐसा करने से, और ऐसी अनुकूलताएँ प्रदान कर देने से, वे अपने-अपने विषयों में सम्पूर्ण-दक्ष हो सकते हैं। आधुनिक छात्र 'खंड-खंडशः पाण्डित्यम्' प्राप्त करने से एक भी विषय में काफी दक्ष

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नहीं होता है बल्कि उससे विपरीत अनेक अरुचिकर विषयों का भार होने के कारण, फुटबाल, बाली बाल, टेनिस, क्रिकेट, हाकी, कबड्डी, खो-खो आदि अनेक खेलों के और मनोविनोद के साधनों के रहते हुए भी, आज का विद्यार्थी शारीरिक और मानसिक शक्तियों में इतना निर्बल रहता है कि, जिसके वास्तविक स्वरूप को देखने से दया उत्पन्न होती है। शारीरिक व मानसिक निर्बलताओं में आजकल के वैषयिक प्रलोभन भी कारण हैं, जिनसे उनकी मनोवृत्तियाँ शिथिल सत्व-विहीन रहती हैं।

४—इसी विषय के साथ संबंध रखने वाली बात पाठ्यग्रन्थों की भी है। पाठ्यग्रन्थ भी उम्र और बुद्धि को लक्ष्य में रखकर के निर्धारित किये जाने चाहिएँ। पुस्तकें, यह विद्यार्थियों के लिए रात दिन की साथी हैं। इसलिए पुस्तकें ऐसी होनी चाहिएँ, जिनसे कि विद्यार्थियों को चरित्र-निर्माण में अधिक सहायता मिल सके। अक्सर देखा गया है कि, सातवीं कक्षा तक पहुँचे हुए विद्यार्थियों को न तो शुद्ध पढ़ना ही आता है, न शुद्ध और सफ़ाई से लिखना। इसके कारण में पढ़ाने वाले की न्यूनता हो सकती है. किन्तु बुद्धि और उम्र का ख्याल न रखते हुए पाठ्य-ग्रन्थों का निर्धारित किया जाना भी एक कारण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जरूर है। परिणाम यह होता है कि प्रारम्भ में जो कच्चा पन रह जाता है, वह ठेठ तक चालू रहता है। मैंने ऐसे हिन्दी 'विशारद' और 'रत्न' उत्तीर्ण हुए महानुभावों के पत्र देखे हैं, जिनके अक्षर साफ सुथरे नहीं; इतना ही नहीं, ह्रस्व-दीर्घ की भी भूलें बहुत पाई गईं। इसका कारण यही है कि प्रारम्भ से ही यह कच्चापन रहा हुआ होता है इसलिए पाठ्यक्रम की पुस्तकें और उनका अनुक्रम इस प्रकार से होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों का ज्ञान दृढ़ हो जाय और वे भविष्य में किसी को 'किन्तु'—कहने का कारण न हो सकें।

पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव में कुछ अन्य बातों का भी ध्यान रखना आवश्यक है, जो मेरे नम्र मत के अनुसार निम्नप्रकार से है :—

(१) संसार के सारे पदार्थ तीन विषयों में विभक्त किये जा सकते हैं। हेय, ज्ञेय और उपादेय। त्यागने योग्य, जानने योग्य और आचरण करने योग्य। पाठ्य-ग्रन्थों में इन तीनों विषयों का स्पष्टीकरण होना चाहिए, जिससे कि विद्यार्थी किसी प्रकार की भ्रान्ति में न रहें और किसी विषय के लिए व्यर्थ झगड़ा न करें।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(२)—प्रत्येक भारतीय धर्म, धर्मप्रचारक और धर्म के मौलिक सिद्धांतों का परिचय कराया जाय। इस परिचय में किसी प्रकार की अनुचितता, आक्षेप वा असभ्यता न आने पावे, इसके लिए हो सके तो उन-उन धर्मों के तटस्थ, पर धर्मसहिष्णु विद्वानों से ऐसे ग्रन्थ लिखाये जायँ। ऐसा न हो सके तो, वे पाठ ऐसे उदार तथा विद्वान उस धर्म के अनुयायियों को दिखलाकर उनकी सम्मति से सम्मिलित कियेजायँ।

(३)—ऐतिहासिक बातें, जो ऐसी पाठ्य-पुस्तकों में आवें, वे जिस समाज और धर्म से सम्बन्ध रखने वाली हों, उस समाज और उस धर्म के उदार इतिहासज्ञों को दिखाकर सम्मिलित करनी चाहिएँ, अभी-अभी बहुत से ऐसे नाटक तथा उपन्यास हिन्दी, गुजराती तथा मराठी में प्रकाशित हुए हैं, जिनमें विषयों का रस उत्पन्न करने के इरादे से, द्वेषवृत्ति से अथवा वास्तविक इतिहास की अनभिज्ञता से ऐसे अनुचित उल्लेख किये गए हैं, जिनके कारण समाजों में और लेखकों में बहुत बड़ा आन्दोलन हो रहा है। व्यर्थ इस प्रकार की असत्यता और परस्पर मनोदुःख, परस्पर वैर हों, ऐसा निमित्त न होने देना चाहिए। इसीलिए पाठ्यपुस्तकों को निर्धारित करते समय ही इसका ध्यान रखना चाहिए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(४)—ऐतिहासिक तथा भौगोलिक ज्ञान देने में विद्यार्थियों के निकट की वस्तुओं से उसका प्रारम्भ करना चाहिए। अक्सर देखा जाता है कि, ऊंची कक्षाओं के छात्र यूरोप और अमेरिका के, चीन और जापान के, रशिया और फ्रान्स के पहाड़ को जानेंगे, पुलों की लम्बाई और चौड़ाई भी बता देंगे, नदी, नालों, के नाम भी बतला देंगे, वहाँ के राजाओं की जन्म-मरण की तिथियाँ और राजत्वकाल को नी बतलायँगे, उनके लड़के लड़कियों के विवाह कहां हुए, यह वे शायद बतायँगे; किन्तु उनके देश में, उनके प्रांत में, उनके परगने में बल्कि उनके गाँव में कौनसी नदी बहती है ? यह भी नहीं बता सकेंगे। हमारे यहाँ प्राचीन समय में कौन-कौन ऋषि, महर्षि, महात्मा हो गये, इसका इन्हें पता तक नहीं। इसलिए पाठ्यपुस्तकों का क्रम इस प्रकार रहना चाहिए कि, जिससे अपने घर से लेकर समस्त-विश्व तक का ज्ञान उन्हें हो सके।

(५) भारतीय-शास्त्रों में स्त्रियों की ६४ और पुरुषों की ७२ कलाओं का वर्णन आता है। कला विषयक पाठों किंवा पुस्तकों का निर्माण करने के समय उनको सामने रखकर के पाठ्य रचना इस प्रकार करनी चाहिए जिससे उन कलाओं का यथा योग्य ज्ञान हो सके

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और साथ-साथ वे यह भी जान सकें कि इनमें कौन सी कलाएँ हेय, ज्ञेय तथा उपादेय हैं ?

(६)—पाठ्य-रचना में बुनियादी शिक्षण का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। मौण्टिसरी पद्धति से बाल-शिक्षण का जो प्रचार हो रहा है, वह हमारे शिशुओं के चरित्र-निर्माण के लिए बहुत ही उपयोगी है, किन्तु मध्यम और निर्धन स्थिति की जनता के लिए यह शिक्षण आर्थिक दृष्टि से असह्य होने की शिकायत प्रायः लोगों में सुनी जाती है। इसलिए इसे सरल और अल्प-व्ययी बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके साथ ही साथ, मेरी नम्र संमति से, इसी बुनियादी शिक्षण के साथ में भाषा शुद्धि का प्रयोग भी सम्मिलित किया जाय, तो वह अधिकाधिक लाभप्रद हो सकता है। अर्थात् कम से कम तीन वर्ष से अधिक उम्र के शिशुओं को अक्षरज्ञान नहीं होते हुए भी, मात्र मौखिक इशारे से व्यावहारिक बातचीत में संस्कृत-हिन्दी आदि सिखाना चाहिए। अभी हमारे विद्यालय के अन्तर्गत चार से आठ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए 'नूतन बाल शिक्षण शाला' नामक एक विभाग खोलकर कार्य प्रारम्भ किया गया है। इन छोटे बच्चों को भारतीय प्राचीन 'श्रौत' अथवा 'दर्शन' पद्धति से हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में व्यावहारिक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बोलचाल की भाषा सिखाई जाती है। बालक बड़े विनोद के साथ में नेत्र और कर्णेन्द्रिय द्वारा, हम जो सिखाते हैं, उसे शुद्ध उच्चारण के साथ, सीख लेते हैं। न तो प्रत्येक को अलग २ पाठ देने की आवश्यकता रहती है और न रटने की ही। मेरा विश्वास है कि थोड़े समय में ये बच्चे शुद्ध-उच्चारण के साथ अपने घर में अथवा हर किसी व्यक्ति के साथ हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और अंग्रेजी में भी बात-चीत कर सकेंगे।

इस लिए मेरा अनुरोध है कि हमारे बाल-मन्दिरों, शिशुमन्दिरों में इस प्रकार भाषा-ज्ञान के लिए इस पद्धति से शिक्षण अवश्य दिया जाना चाहिए।

मुझे आशा है कि पाठ्य-ग्रन्थों किंवा पाठ्यक्रम के लिए, जो मैंने ऊपर सूचना लिखी हैं, उनपर शिक्षा प्रेमी और शिक्षाधिकारी महानुभाव अवश्य ध्यान देंगे।

५—अब इस लेख को पूर्ण करने के पूर्व एक प्रधान बात की तरफ पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यद्यपि यह निर्विवाद सिद्ध बात है कि हमारी भारतीय प्रजा में पीढ़ी दर पीढ़ी से संस्कारों की मलिनता चली आई है। शुद्ध-गृहस्थाश्रम प्रायः नहीं रहा है। इस लिये हमारे बालकों में चरित्र निर्माण के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

योग्य जैसी पात्रता होनी चाहिये, वैसी नहीं है। फिर भी, हमें चरित्र-निर्माण तो करना ही है। प्रयत्न करेंगे तो आज, नहीं तो, वर्षों, युगों के पश्चात् तो हम अवश्य ही साफल्य प्राप्त करेंगे। ऐसी आशा रखते हुए हमें प्रयत्न करना है।

चरित्र-निर्माण का सीधा सम्बन्ध शिक्षकों के साथ में है। माना कि आधुनिक छात्रों में प्रायः जैसी चाहिए वैसी पात्रता न हो, माना कि शिक्षकों के साथ में केवल चार या पांच घन्टे तक ही विद्यार्थियों का सम्बन्ध रहता है, और माना कि आज के शिक्षक इन्ही विद्यार्थियों में से शिक्षक बने हैं। ('शिक्षक' से मेरा तात्पर्य केवल पढ़ाने वालों से ही नहीं है, शिक्षक, निरीक्षक, और परीक्षक सभी से है जिनका सम्बन्ध एक या दूसरी रीति से छात्रों के साथ में है।) ऐसा होते हुए भी शिक्षकों की जवाबदारी बहुत जबरदस्त है ऐसा मैं मानता हूँ। 'शिक्षक' शिक्षक ही नहीं, बल्कि 'गुरू' हैं, वे शिल्पकार हैं। पत्थर खराब होते हुए भी, अगर शिल्पकार चतुर है, तो उसमें से एक सुन्दर मूर्ति का निर्माण कर सकता है, बल्कि अधिक कुशल शिल्पकार बालू (रेती) की भी तो मूर्ति बनाता है। 'शिक्षक' एक फोटोग्राफर है, लेन्स हल्का होते हुए भी वह अपनी कुशलता से सुन्दर चित्र नहीं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

खींच सकता क्या? शिक्षक के ऊपर विद्यार्थियों की ओर से दो जवाबदारियां हैं। विद्यार्थियों को सुशिक्षित बनाने की और उनके चरित्र निर्माण की। 'शिक्षक' गुरू है, गुरू की 'गुरुता' के आगे शिष्य मस्तक झुकाए बिना न रहेगा। मेरा विश्वास है कि त्याग, संयम, वात्सल्य का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता। आज छात्रगण अपने शिक्षकों को समझ गये हैं, उनकी बेदरकारी का उन को ख़याल है, उनके व्यसनों से वे परिचित हैं, उनके भ्रष्टाचार को वे स्वयम् अनुभव करते हैं, उनकी कर्त्तव्यशीलता वे अपनी आँखों से देखते हैं, उनका मिथ्याडम्बर, उनकी लोभवृत्ति, श्रीमन्त और निर्धन विद्यार्थियों के साथ होने वाली उनकी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियाँ इत्यादि प्रायः सभी बातें आज का विद्यार्थी प्रतिक्षण, प्रत्यक्ष देख रहा है। अहिंसा और सत्य, दया और दाक्षिण्य वात्सल्य और प्रेम आदि का पाठ पढ़ाने के समय विद्यार्थी अपनी दृष्टि ऊँची नीची करके गंभीरता पूर्वक गुरूजी के हार्दिक भावों का पाठ पढ़ता है। विद्यार्थी उस समय क्या सोचता है? "अभी कल ही तो मुझको पास कराने के लिए इन्होंने रुपये ऐंठे हैं। मैं कहीं से भी चुराकर लाया और दिये हैं। आज गुरूजी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता की फिलॉसोफी मुझे समझा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रहें हैं।" वेतन कम मिलता हो, कुटुम्ब का पोषण न होता हो, किन्तु इन बातों का 'गुरुत्व' के साथ क्या सम्बन्ध है ? जुआ खेलते समय खर्च की कमी नहीं मालूम होती, नित्य सिनेमा देखते समय पैसे की तंगी का भान नहीं होता, बार बार होटलों में जाकर के निरर्थक खर्च करते समय पैसों की कमी नहीं मालूम होती, विद्यार्थियों को पढ़ाने के समय 'चरित्र निर्माण' के समय, दिल में यह सोचना कि पढ़ें तो पढ़ें, न पढ़ें तो भाड़ में जायँ, सरकार वेतन कम देती है, मँहगाई अपार है, कुटुम्ब का पूरा खर्च होता नहीं, हम क्यों पढ़ावें ? पढ़ना होगा तो ट्यूशन देंगे हमको ; पास होना होगा तो मुँहमाँगे पैसों पर पास करा देंगे" यह कहां तक उचित है ?

जिन विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों के चरित्रनिर्माण की हम बातें करते हैं, उनके गुरुओं की प्रायः ऐसी दशा है। अभी कुछ दिनों पहले मध्यभारत शिक्षा विभाग के संचालक (डायरेक्टर) प्रसिद्ध शिक्षण शास्त्री और मनोविज्ञान के प्रखर अभ्यासी श्रीमान् झा महोदय ने उज्जैन के अपने एक भाषण में कहा था:—

"नवीन समाज की रचना में राजनीतिज्ञों की अपेक्षा शिक्षकों का अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, और यदि वे इसके महत्त्व को नहीं समझते और नवरचना में अपना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कर्त्तव्य-पालन नहीं करते तो समाज की प्रगति हो नहीं सकती, परिवर्तित परिस्थितियों में अब शिक्षकों का यह अति महत्त्व पूर्ण कर्त्तव्य है कि वे प्रजातन्त्रीय देश के उपयुक्त नागरिक निर्माण करें। इनका काम विषयों का अध्यापन मात्र नहीं है, हम केवल पाठक ही नहीं बल्कि शिक्षक भी हैं, उसका क्षेत्र बालक का सम्पूर्ण जीवन है और हमें बालक के समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करना है, इसका अर्थ यह है कि हमें बालकों के चरित्र को भी एक स्वतन्त्र देश के अनुरूप बनाना है"

थोड़े किन्तु महत्वपूर्ण शब्दों में शिक्षकों के कर्तव्य का जो चित्रण अनुभवी शिक्षासचालक महोदय के द्वारा उपस्थित किया गया है, उसके प्रति हमारा प्रत्येक शिक्षक ध्यान दे और उसके अनुसार कर्त्तव्य पालन करे, तो आज शिक्षा संस्थाओं में स्वर्ग उतर पड़े। हमारे बालक मानव-देव बनें। इसलिये सरकार से भी मेरा यह अनुरोध है कि शिक्षकों के उत्पन्न करने के लिए जो-जो ट्रेनिंग स्कूल खोले जायँ उनमें पाठ्य-पुस्तकों और पढाने की रीति के साथ एक 'शिक्षक' किंवा 'गुरू' की हैसियत से उनमें किन-किन गुणों की आवश्यकता है, इसका भी अवश्य ध्यान रक्खा जाना चाहिए। प्रत्येक शिक्षक में सत्यभाषण, सदाचार, प्रामाणिकता, नम्रता, विवेक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विनय आदि गुण अवश्य होने चाहिएँ, तथा उन्हें चौर्य, घूस, बीड़ी, सिगरेट इत्यादि बाह्य व्यसनों का त्याग करना चाहिए जो प्रथमदर्शन में ही दूसरों पर प्रभाव डालते हैं।

एक बात और भी कह दूं। आज समस्त भारत में ऐसी अनेक संस्थाएँ चल रही हैं जो प्रजा की—जनता की—सहायता से चलती हैं, शिक्षालयों के साथ साथ छात्रालयों को भी रखती हैं और गुरुकुल पद्धति पर शिक्षण तथा बालकों के चरित्रनिर्माण का कार्य करती हैं। ऐसी संस्थाओं को सरकार को काफी सहायता देकर आगे बढ़ाना चाहिए। वस्तुतः देखा जाय तो शिक्षा प्रचार के साथ, चरित्रनिर्माण के कार्य में ऐसी संस्थाएँ सरकार का बहुत कुछ बोझा हलका करती हैं। ऐसी संस्थाएँ, सरकार की ओर से चलाने में जो खर्चा करना पड़े, उससे आधे खरचे में, यदि वही कार्य होना हो, तो सरकार को ऐसे कार्य को अवश्य उत्तेजन देना चाहिए। शिक्षण और चरित्र निर्माण के कार्य में जनता का और शिक्षण प्रेमियों का इस प्रकार का सहकार, यह सचमुच ही अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य समझा जा सकता है। बेशक, ऐसी संस्थाएँ सरकार की नीति के अनुसार साम्प्रदायिकता का विष फैलाने वाली, और राज्य की बेवफा नहीं होनी चाहिएँ। स्वतंत्र भारत में इस प्रकार जनता और सरकार के सहयोग से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जो कार्य होंगे, वे देश के लिए अधिक लाभप्रद और कार्य-सिद्ध-कर हो सकेंगे। मेरे नम्रमत से ऐसी संस्थाएँ, फिर वे गुरुकुल हों या विद्यालय, महाविद्यालय हों चाहे बालमंदिर कोई भी हों, सरकार को कम से कम पचास प्रतिशत व्यय देने का नियम रखना चाहिए। किसी विशेष परिस्थिति में सरकार पचास प्रतिशत से अधिक देकर भी उसको आगे बढ़ा सकती है। बल्कि सरकार को ऐसी संस्थाओं को अधिक प्रोत्साहन देकर उन्हें भारतीय संस्कृति का केन्द्र बनाना चाहिए। ऐसी स्वतंत्र संस्थाओं का सरकार की ओर से निर्माण करने में सरकार को अधिक व्यय, अधिक परिश्रम और अधिक समय लगने की स्वाभाविक संभावना है। ऐसी अवस्था में सारे देश में, ऐसे जो-जो गुरुकुल, आश्रम, विद्यालय, महाविद्यालय हों, उन्हीं को आगे बढ़ाकर नव-निर्माण का कार्यारंभ करना चाहिए।

शिक्षण और चरित्रनिर्माण के विषय में मैंने अपना नम्र अभिप्राय ऊपर प्रकट किया है। आशा है शिक्षाके अधिकारी, एवं शिक्षा से प्रेम रखने वाले महानुभाव इस पर गौर करेंगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com